* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो,श्रम व्यर्थ सभी,केवल बंधनकर।।

वर्ष ६ | गौराब्द ४७७. मास—श्रीधर ११, वार-अनिरुद्ध
बुधवार. ३२ ज्येष्ठ. सम्वत २०२०, १७ जुलाई १९६३ | संख्या २

श्रीश्रीगौरांगस्मरणमंगल स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठकुर भक्तिविनोद कृत]

(५)

श्रीरूपरघुभजनसागरमग्ननृभ्यो यश्चन्द्रशेखरगृहे प्रददौ स्वबुग्धम् ।
स्वां दर्शयन् विजयमुद्धरति स्म भूतिं तं सर्वशक्तिविनवाश्रयणं स्मरामि ।।२७।।

निद्रात्यागः स्वपनमशनं गोद्रुमादौ विहारो ग्रामे-ग्रामे विचरणमहो कीर्तनश्चात्पनिद्रा ।
याभे-याभे क्रमनियमतो यस्यभक्तैर्बभूवु स्तं गौराङ्गं भजनसुखदं हृष्टयामं स्मरामि ।।२८।।

यो वै संकीर्तनपरिकरैः श्रीनिवासादिसङ्गं स्तत्रत्यानां पतितजगदानन्दमुख्यद्विजानाम् ।
दुर्वृत्तानां हृदयविवरं प्रेमपूर्णं चकार तं गौराङ्गं पतितशरणं प्रेमसिन्धुं स्मरामि ।।२९।।

भावावेशैनिखिलसुजनान् शिक्षयामास भक्तिं तेषां दोषान् सदयहृदयो मार्जयामास साक्षात् ।
भक्तिख्याख्यां सुजनसमितौ यो मुकुन्दश्चकार तं गौराङ्गं स्वजनकलुषक्षान्तिमूर्तिं स्मरामि ।।३०।।

यो वै संकीर्तनसुखरिपुं चान्दकाजीं विशोध्य लास्योल्लासैर्नगरनिचये कृष्णगीतं चकार ।
बारं-बारं कलिगदहरं श्रीनवद्वीपधाम्नि तं गौराङ्गं नटनविवशं दीर्घबाहुं स्मरामि ।।३१।।

गंगादासो मुररिपुभिषक् श्रीधर शुक्लवस्त्रः सर्वे यस्य प्रणतिनिरताः प्रेमपूर्णा बभूवुः ।
यस्योच्छिष्टाशनसुरतिका श्रीलनारायणी च तं गौराङ्गं परमपुरुषं दिव्यमूर्तिं स्मरामि ॥३२॥

श्रीवासस्य प्रणयविवशस्तस्य सूनोर्गतासे-र्बंधुत्रातस्त्वं परमशुभदं श्रावयामास तस्मै ।
तद्दासेभ्योऽपिच शुभमतिं दत्तवान् यः परात्मा वंदे गौरं कुहकरहितं जीवनिस्तारकं तम् ॥३३

गोपीभावात् परमविवशो दण्डहस्तः परेशोवासक्तानतिजडमतीन् ताड़यामास मूढ़ान् ।
तस्मात्तो यत् प्रतिभटतया बैरभावानतन्वन् तं गौराङ्गं विमुखकदने दिव्यसिंहं स्मरामि ॥३४॥

अनुवाद—

[परलोकगत पं० मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]

भवन चन्द्रशेखर महालक्ष्मी तनु प्रभु धार ।
भक्तन प्यायो स्तन्य पय वत्सलता विस्तार ॥
अक्षर लेखक विजय को रत्न बाहुदरसाय ।
प्रभु वैभव मय कृपा कर तुरत लियो अपनाय ॥२७॥

निद्रात्याग स्नपन पुनि गोद्रुम आदि विहार ।
ग्राम-ग्राममें विचरबो संकीर्तन रस सार ॥
दिव्य भाव भक्तन भये क्रमते सकल अमन्द ।
अष्टयाम पाये यही प्रभुजन परम अनन्द ॥२८॥

जगदानन्द प्रमुख द्विज पतित कीये उद्धार ।
कीर्तन परिकर श्रीनिवासादि भक्त सङ्गद्वार ॥
प्रभु निज भावावेश तें सुजनन भक्ति सिखाय ।
हृदय दोष मार्जन किये कृष्ण प्रेम रस पाय ॥२९॥

निज सुजननकी समितिमें कीयो भक्ति बखान ।
ऐसे करुणामय हरि करो भक्ति रस पान ॥
नदिया वीथिनमें भयो हरिसंकीर्तन शोर ।
पाखण्डी हरि विमुखजन हीये मत्सर घोर ॥३०॥

सबन जाय नालिश करी यह काजी के पास ।
"होत उपद्रव जगतमें हुड है देश विनास ॥"
सुनत तुरत काजी उठो अपने दल बल संग ।
हरिकीर्तन बारन कियो फोरे झाझ मृदंग ॥
नगर कीर्तन प्रभु कियो लै निज परिकर संग ।
मत्त भये नागर सकल काजी गृह किय भंग ।
शुद्ध कियो प्रभु 'चाँद-काजी' भक्त बनाय ।
सुर दुर्लभ हरि भक्ति प्रभु यवनन हुइ लुटाय ॥
नृत्य गान हरि कीरतन नदिया नगर मझार ।
लक्षन दीपक बालकें कियो प्रभू प्रचार ॥
नाम ब्रह्म सब नगर में छायो बारंबार ।
नृत्य विवश गौरांग प्रभु किये जीव भवपार ॥३१॥

मुररिपु गंगादास श्रीधर शुक्लाम्बर आप ।
भये प्रेम पूरन सबें प्रभु पद प्रणति प्रताप ॥
प्रभु पातर उच्छिष्टके करण नारायणि पाय ।
अश्रु पुलक रोमांच युत भई भक्ति अधिकाय ॥३२॥

प्रणय विवश श्रीवासके मृत सुत वचन सुनाय ।
जीव जन्म संसार को तत्त्व दियो समझाय ॥३३॥

गोपी भावन विवश प्रभु दण्ड हस्त उठि धाय ।
जड़ मति मूढ़ विवादपर दीने ताड़ भगाय ॥
ते मूरख प्रतिकूल है कियो बैर विस्तार ।
याही छल प्रभु विमुख जन कदन कियो बहुबार ॥

(क्रमशः)

अनर्थ दूर करनेका उपाय

नियमितरूपमें संख्या ठीक रखकर उच्च-स्वरसे कृष्णनामका कीर्तन करनेसे अनर्थकी निवृत्ति होती है। जड़ता आलस्य आदि वैसे ही भाग खड़े होते हैं, जैसे सिंहको देखकर हिरण भाग खड़े होते हैं। यहाँ तक कि भगवद्विमुखगण भी विरोधिता करना छोड़ देते हैं। श्रीनाम ग्रहण करते समय सांसारिक चिन्ताओंका उदय होता है, इसीलिये इससे घबड़ा कर श्रीनाम-ग्रहणमें शिथिलता नहीं आने देनी चाहिये अथवा श्रीनाम करना छोड़ नहीं देना चाहिये। ऐसी दशामें तो और भी उत्साहपूर्वक निरन्तर नाम करना चाहिये। श्रीनाम-ग्रहणके आवान्तर फल-स्वरूप क्रमशः वे सांसारिक वृथा चिन्ताएँ दूर हो जायेंगी। इसके लिये अधिक चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं। पहले श्रीनाम ग्रहण कीजिये। पीछे फल होगा। पहले ही फल होनेकी संभावना नहीं। श्रीकृष्णनाममें अत्यन्त प्रीति उदय होने पर जड़ीय चिन्ताका लोभ कम हो जायगा। कृष्णनाममें अत्याग्रह हुए बिना पहले ही जड़ीय चिन्ताएँ कैसे दूर हो सकती है? श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूप गोस्वामी को सम्पूर्ण शक्ति अर्पण कर दिया है। उन श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीरूपानुग प्रभुगणके श्रीचरणोंमें श्रीमन्महाप्रभुद्वारा संचारित कृपाशक्तिके लिये कातर हृदयसे प्रार्थना करो। विशेषतः श्रीनाम प्रभुके निकट उनकी सेवाकी योग्यता या अधिकारकी प्राप्तिके लिये रो-रोकर प्रार्थना करो। नामप्रभु बड़े दयालु हैं; वे नामीप्रभु होकर तुम्हारे हृदयमें विराजमान हो जायेंगे।

प्राक्तन-कर्मोंके फलस्वरूप जो शारीरिक या मानसिक ताप या दुःख-कष्ट दिखलायी पड़ते हैं, उनको भगवानकी कृपा समझकर हरि-गुरु-वैष्णवोंके चरण कमलोंका स्मरण करते-करते सह लो। उससे कभी घबड़ाओ नहीं, दुःखी न होओ। कभी भी किसी दैवी आपत्ति, विपत्ति, दुर्घटना या रोगसे न डरो। उन्हें आलिंगन कर यथा समय बिदा दो। श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी कहा करते थे कि हमारे शरीरमें रोगोंके आने पर स्वादिष्ट और बढ़िया खाद्य पदार्थोंको नहीं खानेसे वे रोग-समूह अपने-आप भाग जायेंगे। बाबूओं और विलासियोंके शरीरमें आदर-यत्न पाकर वे अधिक दिनों तक निवास करते हैं।

आशाबन्ध (कृष्ण निश्चय ही कृपा करेंगे ऐसी आशा), समुत्कण्ठा, कृष्ण एवं कृष्ण-प्रेमियोंकी सेवा श्रीनाम-संकीर्तन करने से अवश्य ही कल्याण होता है। सर्वदा कृष्णार्थे अखिल चेष्टाविशिष्ट होनेसे मायाका प्रलोभन हम पर असर नहीं कर सकता। सदा सर्वदा श्रवण-कीर्तन करो। महाजन-ग्रन्थ और गौड़ीय (श्रीभागवत-पत्रिका) का पाठ करो। ऐसा होने पर थोड़े ही दिनोंमें सिद्धान्त-ग्रहणके विषयमें आलस्य दूर हो जायगा। जिन भक्तोंके साथ रहते हैं, उनसे परस्पर हरिकथाकी चर्चा करो। भजनकी उन्नतिके साथ-साथ अपनी दीनता और हीनताकी

उपलब्धि होगी। 'सर्वोत्तम व्यक्ति अपनेको हीन समझते हैं।'

कृष्णसेवा, कृष्णभक्तोंकी सेवा और श्रीनाम-संकीर्तन—ये तीन अलग-अलग अनुष्ठान होने पर भी ये तीन एक ही तात्पर्यपर हैं। नाम-संकीर्तनसे कृष्ण और कृष्ण-भक्तोंकी सेवा होती है। वैष्णवकी सेवा करनेसे कृष्णकीर्तन और कृष्ण-सेवा होती है। कृष्ण-सेवासे ही नामसंकीर्तन और वैष्णव-सेवा होती है। उसका प्रमाण है—"सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितम्।" श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ करनेसे कृष्णसेवा और श्रीनाम संकीर्तन होता है। सत्सङ्गमें श्रीमद्-भागवतका पाठ करनेसे भी वही होता है। अर्चनसे भी ये तीनों कार्य हो जाते हैं। नाम भजनसे वह कार्य सुष्ठुरूपसे सम्पन्न होता है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

सिद्धान्तरत्न या वेदान्त-पीठक

श्री गौड़ीयवेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण महाशयने ब्रह्मसूत्रका 'श्रीगोविन्द भाष्य' प्रकाशित कर उसके पीठस्वरूप अर्थात् सिंहासन स्वरूप एक परम उपादेय सिद्धान्त-ग्रन्थकी भी रचना की है। जिसका नाम है—सिद्धान्त रत्न या वेदान्त पीठक। उक्त ग्रन्थसे गौड़ीय मध्व-सम्प्रदायी वैष्णवोंका विशेष हित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है।

श्रीबलदेव-विद्याभूषणजीका जीवन-चरित्रका उल्लेख किसी भी ग्रन्थमें नहीं मिलता। किसी भी पुस्तकमें उनके सम्बन्धमें निर्भर योग्य सामग्री उपलब्ध नहीं है। उन्होंने स्वयं अनेकानेक ग्रन्थ लिखे हैं। उनमेंसे वेदान्तसूत्र-भाष्य, गीता भाष्य, सहस्र-नाम भाष्य और कुछ उपनिषदोंके भाष्य आदि ग्रन्थों को मैंने पढ़ा है। श्रीरूप गोस्वामी कृत स्तवमालाका बलदेव भाष्य, तत्त्व-सन्दर्भकी टीका और स्यामन्त (छोटी पुस्तिका) आदि पुस्तकों को भी मैंने पढ़ा है। परन्तु किसी भी ग्रन्थ में उन्होंने अपना कोई विशेष उल्लेख योग्य परिचय नहीं लिखा है। हाँ, कहीं-कहीं केवल 'मुरारी' को अपने चौथे पूर्वदेशिक (अपने पूर्व चौथे गुरु) के रूपमें परिचय दिया है।

जब मैं श्रीजगन्नाथ पुरीमें राजकार्यमें नियुक्त था, उस समय मुझे श्रीबलदेवके ब्रह्मसूत्र पाठ करनेका सुयोग प्राप्त हुआ था। तब मैंने अनेक वृद्ध पण्डितों से श्रीबलदेव-विद्याभूषणका परिचय पूछा था। उनमें से कुछ पण्डितोंने ऐसा कहा था कि—बलदेव उड़ीसा प्रान्तमें खण्डाइत वंशमें पैदा हुए थे। वे छोटी उम्र से ही तीर्थ-भ्रमण और विद्योपार्जनमें लग पड़े थे। चिल्का-ह्रदके उस-पार किसी विद्वत्-ग्राममें उन्होंने व्याकरण और अलंकार आदि बालविद्याका अभ्यास किया। पीछेसे न्याय-शास्त्रका विधिवत् अध्ययन कर वेदोंका भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् मैसूर आदि में वेदान्तका अध्ययन किया। पहले शाङ्कर-भाष्यको

पढ़ कर पीछे श्रीमध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया। इसी समय वे तत्त्व-वादियोंके शिष्य होकर मध्व सम्प्रदायमें प्रविष्ट हुए।

वेदान्त-विशारद बलदेव थोड़े ही दिनोंमें दिग्विजयी पण्डितके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। दक्षिण और उत्तर भारतके जिन-जिन स्थानोंमें वेदान्तका अध्ययन अध्यापन होता है, वे वहाँ-वहाँके पण्डितों और संन्यासियोंकी पूजा प्राप्त हुए थे। भारतमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त किसी दूसरी जातिके व्यक्तिका धर्म-प्रचार में अधिकार नहीं होनेके कारण वे कहीं भी अपने वर्णका परिचय न देकर वैष्णव संन्यास ग्रहण करके सर्वत्र ही पूजित होते थे। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रके पण्डितोंको पराजित कर वे वहाँके तत्त्ववादी (मध्व-सम्प्रदायके) मठमें निवास करने लगे। उसी समय गौड़ीय वैष्णवोंने श्रीबलदेव जैसे रत्नको अपने सम्प्रदायमें आकर्षण करनेके लिये प्रयत्न किया। बलदेव जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और पारमार्थिक बुद्धिसे सम्पन्न व्यक्तिको पराजय करना हँसी खेलकी बात नहीं थी। इसलिए वे लोग श्रीरसिक मुरारीके प्रशिष्य श्रीराधा दामोदरदाससे श्रीबलदेवको अपने सम्प्रदायमें आकर्षण करनेका अनुरोध किया। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि यदि आवश्यकता पड़े तो आप बलदेव को शास्त्रार्थमें पराजित करके भी उन्हें गौड़ीय सम्प्रदायमें आकर्षण कीजिए। धीरे-धीरे श्रीराधादामोदर जीका बलदेव विद्याभूषणके साथ बन्धुत्व बढ़ने लगा। कुछ ही दिनोंमें बलदेव विद्याभूषण श्रीराधादामोदर जीके प्रति ऐसे आकृष्ट हुए कि वे सर्वदा श्रीदामोदर जीके साथ ही रहने लगे। श्रीराधादामोदरजीने वेदान्त शास्त्रका साधारणरूपमें अध्ययन किया था; परन्तु षट् सन्दर्भका गम्भीर अध्ययन किया था और इस विषयमें पारंगत विद्वान समझे जाते थे। बलदेव उनके निकट षट् सन्दर्भ अध्ययन करना चाहते थे। परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि 'गौड़ीय माध्व-सम्प्रदायी वैष्णवके अतिरिक्त किसी भी दूसरे व्यक्तिका इस ग्रन्थको पढ़नेका अधिकार नहीं है, तब वे बड़े ही दुःखित हुए और श्रीराधादामोदरको शास्त्रीय विचार करनेके लिए उन्होंने प्रार्थना की। श्रीराधादामोदरजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण होनेपर भी महाप्रेमी वैष्णव थे। उनका भक्तिभाव और प्रेमको देखकर उनके प्रति बलदेवकी आन्तरिक श्रद्धा हो गयी थी। फिर भी विचार स्थलमें दोनोंके बीच प्रचुर शास्त्रीय युद्ध हुआ। भगवान्‌की इच्छासे अन्तमें बलदेव पराजित हुए और श्रीराधादामोदरके शिष्य हो गये। तब उन्होंने अपना मध्वान्वय ठीक रखकर ही श्रीकृष्ण चैतन्यको भगवान जानने पर अपनेको गौड़ीय माध्वी सम्प्रदायी मानकर धन्य समझा।

अहा! बलदेव जैसे वैदिक पण्डित जब श्रीगुरु की कृपासे कृष्णप्रेमको प्राप्त कर हरिनामके बलसे मत्त हो उठे, तब उनका जड़ीय अभिमान भला कैसे रह सकता है? उसके पश्चात् पुरुषोत्तम क्षेत्रसे श्रीनवद्वीपका दर्शन कर श्रीवृन्दावनमें उपस्थित हुए और किसी देवालयमें रह कर भजन करने लगे।

उसी समय जयपुरमें श्रीगोविन्दजी और श्रीनारायण इन दोनोंमें पहले किसकी पूजा हो—इस विषयको लेकर बड़ी हलचल मची हुई थी। जयपुरके नरेश बहुत पहलेसे ही श्रीगौड़ीय सम्प्रदायकी मान्यता

के अनुसार उनके अनुगामी होकर श्रीगोविन्दजीकी पूजा पहले करके पीछेसे श्रीनारायणकी पूजा करते आ रहे थे। परन्तु उन दिनों श्रीसम्प्रदायके कुछ महन्थ वैष्णवगण जयपुरमें पधार कर श्रीकृष्णकी पूजासे पहले ही श्रीनारायणकी पूजाकी प्रथा आरम्भ करना चाहते थे। परन्तु तात्कालीन सदाचारी राजा उनकी उस नयी व्यवस्थासे सहमत नहीं हुए और साथ ही इस विषयमें वेदान्त आदि शास्त्रोंका यथार्थ विचार क्या है--यह जाननेके लिये तथा श्रीसम्प्रदायके पण्डित महन्थोंसे विचार करनेके लिये किसी योग्य एवं अधिकारी वैष्णव पण्डितको जयपुरमें बुलानेके लिये चेष्टा करने लगे। राजा द्वारा जयपुरकी गड़बड़ी का संवाद जानकर वृन्दावनके वैष्णवगण श्रीगोविन्द जीकी मर्यादाकी रक्षाके लिये तत्कालीन वैष्णवाग्रगण्य पण्डित शिरोमणि श्रीविश्वनाथ ठाकुरके पास पहुँचे और उनको जयपुर जाकर श्रीसम्प्रदायी वैष्णव पण्डितोंसे विचार युद्ध करनेके लिये अनुरोध किया। परन्तु चक्रवर्तीजी उस समय अत्यन्त वृद्ध होनेके कारण उन्हें किसी दूसरे पण्डितको इस कार्यके लिये चुननेको आदेश दिया। तब वैष्णवोंने श्रीबलदेव विद्याभूषणको इस कार्यके लिये उपयुक्त व्यक्ति चुना। श्रीचक्रवर्ती महाशयने भी सोच-विचार करके बलदेवको अपनेसे अधिक पण्डित और वेद वेदान्तका पारङ्गत विद्वान जानकर जयपुर भेजा।

श्रीबलदेव जयपुरके लिये रवाना हुए। हाथोंमें कमण्डलु, कन्धे पर फटी गुदड़ी, कमरमें कौपीन और बहिर्वास, पूर्ण निष्किंचन वेशमें अकेले सीधे राजसभामें उपस्थित हुए। राजा इनके इस निष्किंचन वेशको देखकर इनको एक साधारण भिक्षुक मात्र समझा। यहाँ तक कि बलदेव विद्याभूषणने जब राजासे यह कहा कि वे वृन्दावनसे श्रीसम्प्रदायके वैष्णवोंके साथ शास्त्रार्थके लिये आये हैं, तब भी राजा और सभासदोंको विश्वास नहीं हुआ कि यह साधारण भिक्षुक भी इतना विद्वान हो सकता है? फिर भी बलदेवजीने श्रीसम्प्रदायके वैष्णव पण्डितोंके साथ भेंट कर विचार करनेके लिये कहा। इस पर उन्होंने पूछा कि—'आप किस भाष्यका अवलम्बन करके विचार करेंगे?' बलदेवने उत्तर दिया—'मैं मध्वशिष्य हूँ; मध्वभाष्यको लेकर विचार करूँगा।' यह सुनकर श्रीसम्प्रदायी पण्डितोंने फिर कहा—'मध्वभाष्यमें तो केवल कृष्णकी ही प्रतिष्ठा है, श्रीराधाकी तो उसमें प्रतिष्ठा नहीं है; ऐसी दशामें क्या श्रीगोविन्दजी बिना श्रीराधिकाके अकेले पूजा ग्रहण करेंगे?' तब बलदेवने देखा कि उनका काम मध्वभाष्यसे नहीं चल सकता। इसलिये उन्होंने कुछ दिनोंका समय लेकर श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरमें बैठकर श्रीगोविन्दजीकी आज्ञासे ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य, सहस्रनाम भाष्य और उपनिषद् भाष्य लिख लिया और पुनः सभामें शास्त्रार्थ करके श्रीवैष्णवोंको पराजित कर श्रीराधागोविन्दजीकी सर्वप्रथम-पूजाकी व्यवस्थाको चालू रखवाया। इसी विद्वत्सभासे श्रीबलदेवको 'विद्याभूषण' की उपाधि दी गयी थी।

इस बड़े महत्वके कार्यको सुसम्पन्नकर श्रीबलदेव वृन्दावन लौट आये और शेष जीवन श्रीश्यामसुन्दरके अध्यक्षके रूपमें बिताये। इसी समय उन्होंने अन्यान्य ग्रन्थोंकी रचना की।

श्रीमन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके लगभग २०० वर्षोंके मध्य ही श्रीबलदेवने यह बृहत्कार्य सम्पन्न

किया । उनके गुरुदेवके परम गुरु श्रीमुरारी थे। श्रीमुरारीके गुरु श्रीरसिकानन्दजी थे तथा श्रीरसिकानन्दजीके गुरु प्रसिद्ध श्रीश्यामानन्दजी हैं, जो बचपन में दुःखी कृष्णदासके नामसे प्रसिद्ध थे। अतएव बलदेव श्रीश्यामानन्द परिवारके है। श्रीश्यामसुन्दर इस परिवारके कुलदेवता हैं। विद्याभूषण महाशयने लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जयपुरमें श्रीगोविन्दपूजाकी प्रतिष्ठा और ग्रन्थ रचना आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। किसी-किसी अत्यन्त वृद्ध वैष्णवोंने मुझसे ऐसा कहा था कि उनके गुरुदेवने श्रीबलदेव-विद्याभूषणको देखा था।

श्रीबलदेव-विद्याभूषणजी श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक उज्ज्वल नक्षत्र थे। उन्होंने इस सम्प्रदायका इतना अधिक उपकार किया है कि श्रीगोस्वामियोंके पश्चात् उनके समान और किसी भी आचार्यने नहीं किया है। इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे श्रीचैतन्य महाप्रभुके नित्यपार्षदोंमेंसे एक हैं। किसी वैष्णव-ग्रन्थमें ऐसा इङ्गित दिया गया है कि श्रीचैतन्य-पार्षद श्रीगोपीनाथ मिश्र—जिन्होंने सार्वभौमके साथ श्रीमन्महाप्रभुके मुखसे ब्रह्मसूत्रका भाष्य श्रवण किया था—वे ब्रह्मा थे और वे ही गौड़ीय ब्रह्म-सम्प्रदायके भाष्यकर्त्ताके रूपमें पीछेसे विद्याभूषणके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। वैष्णवोंकी सारी बातें सत्य ही होती हैं और यह बात भी सत्य ही है—ऐसा अनुमान होता है।

कोई-कोई अर्वाचीन व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि बलदेवका मत गोस्वामियोंके मतसे कुछ निम्न श्रेणीका है। परन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं है। हमने अच्छी तरहसे विचार करके यह देखा है कि श्रीबलदेव और श्रीजीव गोस्वामीका मत एक ही है; दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं है। तब बलदेवका यह वैशिष्ट्य है कि उन्होंने भाष्यकारके गांभीर्यकी रक्षा करनेके लिये वैदान्तिक प्रणाली और वैदान्तिक शब्दोंका प्रयोग अधिक किया है। परन्तु इससे उनकी विचारधारा या मतमें गोस्वामियोंके मतसे तनिक भी अन्तर नहीं आने पाया है। तत्त्व-विषयमें अथवा उपासनाके विषयमें—सर्वत्र ही दोनोंने एक ही प्रकार का सिद्धान्त किया है।

(क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रुतयः पलालकल्पाः किमिह वयं साम्प्रतं चिनुमः ?
अध्ययत पुरैव नयनैरामीरीभिः परं ब्रह्म ॥

—पद्यावली

—श्रुतियाँ तो अब तण्डुलरहित धानके भुसके समान हैं। इनमेंसे अब हम क्या ढूढ़ निकालें ? क्यों कि इन श्रुतियोंका प्रतिपाद्य जो ब्रह्म है, उसको तो गोपियोंने पहले ही नेत्रोंद्वारा निकाल लिया है। तात्पर्य यह कि अब सूखे ब्रह्मज्ञानी बननेसे तो उस ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। अतः गोपियोंका आनुगत्य स्वीकार करनेसे ही उस परं ब्रह्म—श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो सकती है ॥

उपनिषद्-वाणी

वृहदारण्यकोपनिषद्-४

[गतांक पृष्ठ २४ से आगे]

तब चाक्रायण उषस्तने पूछा—'याज्ञवल्क्य ! अपरोक्ष आत्मा और सर्वान्तर आत्माकी व्याख्या करो ।'

याज्ञवल्क्य—'तुम्हारी आत्मा ही सर्वान्तर है ।'

उषस्त—'इसे और भी स्पष्ट रूपसे बतलाओ ।'

याज्ञवल्क्य—दृष्टिके द्रष्टाको देखा नहीं जा सकता, श्रुतिके श्रोताको सुना नहीं जा सकता, मतिके मन्ताका मनन नहीं किया जा सकता तथा विज्ञातिके विज्ञाताको जाना नहीं जा सकता । आत्मासे भिन्न सब कुछ नश्वर है ।

तत्पश्चात् कौषीतकेय कहोलने पुनः अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तरात्माके विषयमें प्रश्न किया । याज्ञवल्क्यने कहा—'तुम्हारा आत्मा ही सर्वान्तर है । क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह और मृत्युसे परे स्थित आत्माको जानकर ब्राह्मण पुरुष पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा आदि सबका त्याग कर भिक्षाचर्यासे विचरते हैं । तब आत्मज्ञान रूप बलसे बलवान होकर पाण्डित्यकी पूर्णता प्राप्त कर तथा मौन-अमौन की पूर्णता सम्पादन कर ब्राह्मण कृतकृत्य हो जाता है । इसके अतिरिक्त सब कुछ नश्वर है ।

तत्पश्चात् वचक्नुकी पुत्री गार्गीने पूछा—'याज्ञवल्क्य ! यह जो कुछ है, सब जलमें ओत-प्रोत है, परन्तु जल किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया—'वायु में ।'

गार्गी—'वायु किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'अन्तरिक्ष लोकमें ।'

गार्गी—'अन्तरिक्षलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'गन्धर्वलोकमें ।'

गार्गी—'गन्धर्वलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'आदित्यलोकमें ।'

गार्गी—'आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत है?'

याज्ञवल्क्य—'चन्द्रलोकमें ।'

गार्गी—'चन्द्रलोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—'नक्षत्रलोकमें ।'

गार्गी—'नक्षत्रलोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—'देवलोकमें '

गार्गी—'देवलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'इन्द्रलोकमें ।'

गार्गी—'इन्द्रलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'प्रजापति लोकमें ।'

गार्गी—'प्रजापतिलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'ब्रह्मलोकमें ।'

गार्गी—'ब्रह्मलोक किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य—'गार्गी ! अति प्रश्न मत कर । नहीं तो मेरा मस्तक गिर जायगा । जिसके विषयमें अति

प्रश्न नहीं करना चाहिए, तू उसीके विषयमें अति-प्रश्न कर रही है।'

तब गार्गी चुप हो गयी।

तदनन्तर आरुणि उद्दालकने पूछा—'याज्ञवल्क्य! हम मद्रदेशमें यज्ञशास्त्रका अध्ययन करने गये थे। वहाँ हम कपिगोत्रोत्पन्न पतञ्जलके घर पर रहते थे। उसकी भार्या गन्धर्व द्वारा ग्रहीत थी। हमने उस गन्धर्वसे पूछा कि 'तू कौन है?' उसने कहा—'मैं आथर्वण कबन्ध हूँ।' उसने पतञ्जल और उसके याज्ञिकोंसे पूछा—'क्या तुम उस सूत्रको जानते हो, जिसके द्वारा यह लोक, परलोक और सारे भूत ग्रथित हैं?' पातञ्जल काप्यने उत्तर दिया—'मैं उसे नहीं जानता।' कबन्धने फिर पूछा—'क्या तुम उस अन्तर्यामीको जानते हो जो इस लोक, परलोक और समस्त भूतोंको भीतरसे नियमित करता है?' काप्यने फिर नकारात्मक उत्तर दिया। तब कबन्धने फिर कहा—'जो व्यक्ति उस सूत्रको एवं उस अन्तर्यामीको जानता है, वह ब्रह्मवेत्ता है, इहलोकवेत्ता है, देववेत्ता है, वेदवेत्ता है, भूतवेत्ता है, आत्मवेत्ता है और सर्ववेत्ता है। याज्ञवल्क्य यदि तुम उस सूत्र और अन्तर्यामीको न जानकर व्यर्थ ही ब्रह्मवेत्ता होनेका अभिमान रखते हो, तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा।'

यह सुनकर याज्ञवल्क्य बोले—वायु ही वह सूत्र है। उसीके द्वारा यह लोक, परलोक और भूतसमुदय गुथे हुए हैं। और जो पृथिवीके भीतर रह कर पृथिवीका नियमन करता है, पृथिवी जिसे नहीं जानती, वह आत्मा, अन्तर्यामी और अमृत है। जो जलके भीतर रह कर जलको नियमित करता है, परन्तु जल जिसे नहीं जानता, वे ही आत्मा अन्तर्यामी हैं। जो अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिक्समूह, चन्द्रमा, आकाश, तम:, प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान, वीर्य और समस्त भूतोंमें वर्तमान रह कर सबका नियमन करते हैं, वे ही अन्तर्यामी आत्मा हैं। उनको देखा नहीं जाता, परन्तु वह सबको देखता है, उसकी बातें सुनी नहीं जा सकतीं, परन्तु वह सब कुछ सुनता है, उसका मनन नहीं किया जा सकता, परन्तु सब कुछ मनन करता है। उनको विशेष रूपसे जाना नहीं जाता, परन्तु वे सबको विशेष रूपसे जानते हैं, वे ही अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। उनके अतिरिक्त सब कुछ नश्वर है।'

उसके पश्चात् गार्गीने कहा—'पूजनीय ब्राह्मणों! अब मैं इनसे दो प्रश्न पूँछूगा। यदि इन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे दिया तो ये अवश्य ही ब्रह्मवेत्ता समझे जायेंगे।

ऐसा कह कर गार्गीने याज्ञवल्क्यसे पहला प्रश्न किया—'जो द्युलोकके ऊपर है, पृथ्वीके नीचे है तथा द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें वर्तमान है, स्वयं भी जो ये द्युलोक और पृथ्वीलोक है तथा जिन्हें भूत, वर्तमान एवं भविष्य—इस प्रकार कहते हैं, वे किसमें ओतप्रोत हैं।'

याज्ञवल्क्य—'ये सब आकाशमें ओतप्रोत हैं।'

गार्गीने कहा—'याज्ञवल्क्य! आपको नमस्कार है, आपने मेरे प्रथम प्रश्नका उत्तर दे दिया। अब आप मेरे द्वितीय प्रश्नका उत्तर दीजिए। बतलाईये—'आकाश किसमें ओतप्रोत है?'

याज्ञवल्क्य—'इस तत्त्वको अक्षर कहा जाता है। वह न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न श्रोत है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न भीतर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं है; वह कुछ नहीं खाता है। उसी अक्षर वस्तुके प्रशासनमें सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथ्वी, निमेष, मुहूर्त, मास, ऋतु, संवत्सर आदि विशेष रूपसे धारण किये हुए स्थित हैं। इस अक्षरके प्रशासनमें ही पूर्ववाहिनी और दूसरी नदियाँ श्वेत पर्वतोंमें बहती हैं तथा अन्य पश्चिम वाहिनी नदियाँ उसीका अनुसरण करती हैं। उसीके सुशासनमें देवतागण यजमानका और पितरगण दर्वीहोमका अनुवर्त्तन करते हैं। जो कोई इस लोकमें इस अक्षरको न जानकर होम करता है अथवा दीर्घकाल तक तपस्या करता है, उसकी ये सारी क्रियाएँ नाशवान हो जाती हैं। जो व्यक्ति इस अक्षर पुरुषको बिना जाने इस लोकसे मरकर जाता है, वह कृपण है। और जो व्यक्ति इस अक्षर को जानकर इस लोकसे मर कर जाता है, वह ब्राह्मण है। यह अक्षर स्वयं दृष्टिका विषय नहीं, परन्तु द्रष्टा है; श्रवणका विषय नहीं, परन्तु श्रोता है, मननका विषय नहीं, परन्तु मन्ता है; स्वयं अज्ञात रह कर भी दूसरोंका विज्ञाता है। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी द्रष्टा नहीं है, श्रोता नहीं है, अथवा विज्ञाता नहीं है। उस अक्षर पुरुषमें ही यह आकाश ओतप्रोत है।'

ऐसा सुनकर गार्गीने उपस्थित ब्राह्मण मण्डलीसे कहा—'पूज्य ब्राह्मणगण! आपमें से कोई भी इन याज्ञवल्क्यजीको ब्रह्म विषयक वादमें जीतने वाला नहीं है।' ऐसा कह कर वह याज्ञवल्क्यजीको नमस्कार करके बैठ गयी।

उसके पश्चात् शाकल्य विदग्धने याज्ञवल्क्यसे पूछा—'याज्ञवल्क्य देवगण कितने हैं?'

याज्ञवल्क्य—'तीन हजार तीन सौ छः हैं।

शाकल्य—'कितने देव हैं?'

याज्ञवल्क्य—'तैंतीस। (आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और प्रजापति) और तो इनकी महिमाएँ ही हैं।'

शाकल्य—'वसु कौन-कौन हैं?'

याज्ञवल्क्य—'अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरीक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा और नक्षत्र। इन्हींमें यह सब जगत निहित है। इसीसे इनका नाम वसु है।'

शाकल्य—'रुद्र कौन-कौन हैं?'

याज्ञवल्क्य—'पुरुषकी दस इन्द्रियाँ और मन—ये ग्यारह हैं। मृत्युके समय जब ये इस मरणशील शरीरसे उत्क्रमण करते हैं, उस समय रुलाते हैं, अपने आत्मीय-सम्बन्धियोंको रुलाते हैं, इसलिये रोदनके कारण रुद्र कहलाते हैं।'

शाकल्य—'इन्द्र और प्रजापति कौन हैं?'

याज्ञवल्क्य—विद्युत ही इन्द्र है और यज्ञ ही प्रजापति हैं।'

शाकल्य—'स्तनयित्नु कौन है?'

याज्ञवल्क्य—'वज्र।'

शाकल्य—'प्रजापति कौन है?'

याज्ञवल्क्य—'पशुगण।'

शाकल्य—'छः देवता कौन-कौन हैं?'

याज्ञवल्क्य—'अग्नि, पृथ्वी, वायु, आदित्य, अन्तरीक्ष और द्युलोक। ये वसु आदि तैंतीस देवताओंके रूपमें अग्नि आदि छः ही हैं।'

शाकल्य—'तीन देवता कौन-कौन हैं ?'

याज्ञवल्क्य—'ये तीन लोक ही तीन देवता हैं। इनमें ही समस्त देवता अन्तर्भुक्त हैं।'

शाकल्य—'एक देवता कौन है ?'

याज्ञवल्क्य—'प्राण। वही ब्रह्म है। उसका दूसरा नाम 'त्यत' है।

शाकल्य—'पूर्व दिशामें कौन देवता हैं ?'

याज्ञवल्क्य—'आदित्य। वे नेत्रमें प्रतिष्ठित हैं, नेत्र रूपमें और रूप हृदयमें प्रतिष्ठित है।'

शाकल्य—'दक्षिणमें कौन देवता है ?'

याज्ञवल्क्य—'यमदेवता हैं। वे यज्ञमें प्रतिष्ठित हैं। यज्ञ दक्षिणामें, दक्षिणा श्रद्धामें और श्रद्धा हृदय में प्रतिष्ठित हैं।'

शाकल्य—पश्चिम में कौन देवता है ?

याज्ञवल्क्य—'वरुणदेव हैं। वे जलमें प्रतिष्ठित हैं। जल वीर्यमें और वीर्य हृदयमें प्रतिष्ठित है।'

शाकल्य—'उत्तरमें कौन देवता हैं ?'

याज्ञवल्क्य—'सोमदेव हैं। वे दीक्षामें प्रतिष्ठित हैं, दीक्षा सत्यमें और सत्य हृदयमें प्रतिष्ठित है।'

शाकल्य—'इस ध्रुवा दिशामें कौन देवता है ?'

याज्ञवल्क्य—'अग्निदेव हैं वे वाक्में और वाक् हृदयमें प्रतिष्ठित हैं।

शाकल्य—'शरीर और हृदय किसमें प्रतिष्ठित हैं ?'

याज्ञवल्क्य—'प्राणमें। प्राण-अपानमें, अपान-व्यानमें, व्यान-उदानमें और उदान समानमें प्रतिष्ठित है। मधुकाण्डमें जिसका विषय नेति-नेति कह कर निरूपण किया गया है, वह आत्मा अगृह्य (ग्रहण नहीं किया जाता), अशीर्ण (नष्ट नहीं होता), असङ्ग (किसीमें आसक्त नहीं होता), असित (व्यथित और हिंसत नहीं होता)। ये आठ (पृथिवी आदि) आयतन हैं, आठ (अग्नि आदि) लोक हैं, आठ (अमृतादि) देवता हैं और आठ (शरीरादि) पुरुष हैं। वह जो इनको जानकर उनका अपने हृदयमें उपसंहार करके औपाधिक धर्मोंका अतिक्रमण किये हुए है, उस औपनिषद पुरुषको मैं पूछता हूँ। यदि तुम मुझे उसे स्पष्ट रूपमें बतला नहीं सके तो तुम्हारा मस्तक गिर पड़ेगा।' शाकल्य औपनिषद् पुरुषके विषयमें उत्तम रूपमें जानता नहीं था। इसलिये वह बतला नहीं सका और उसका मस्तक गिर गया।

तदनन्तर याज्ञवल्क्यने दूसरे-दूसरे ब्राह्मणोंको प्रश्न करनेके लिये कहा, परन्तु किसीका भी उनसे और प्रश्न करनेका साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्य फिर बोले—'मनुष्यके शरीर और वनस्पतियोंके शरीर एक ही प्रकारके धर्मोंवाले होते हैं। वृक्षके पत्ते होते हैं, शरीरमें पत्तोंकी जगह रोम होते हैं, शरीरमें जो त्वचा होती है उसकी जगह वृक्षोंमें छाल होता है। शरीरसे रक्त निकलता है, उसी प्रकार वृक्षोंसे रस निकलता है। शरीरकी अस्थि वृक्षके काठके स्थानमें है। वृक्षको काट देने पर वह पुनः अंकुरित हो उठता है, शरीरका नाश होनेपर पुनः जन्म होता है। उसे कौन पैदा करता (जन्माता) है ? वे विज्ञानमय ब्रह्म ही सबके जनक हैं। वे ही यजमानकी परम गति हैं एवं ब्रह्मवेत्ताओंके परम आश्रय हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तभूदेव श्रौती महाराज

भगवानकी कथा

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ८, संख्या १०-११, पृष्ठ २३९ से आगे)

भगवान श्रीकृष्ण या उनके प्रिय भक्त अर्जुन यदि इस प्रकार कृपाकर कर्मयोगकी शिक्षा नहीं देते तो मायाके द्वारा मोहित जीवगण अनन्तकाल तक कर्मचक्रमें फँसकर दुःख ही भोगते रहते। कर्मीगण यद्यपि मायासे बँधकर असीम क्लेश पाते हैं, तथापि वे मायाके प्रभावसे हतबुद्धि होकर यह जान नहीं पाते। वे जितना ही कर्तृत्वका अभिमान क्यों न करें, फिर भी वे माया मोहित हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीतामें यही कहते हैं:—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
(गीता ३।२१)

अविद्वान्, कर्मी यही नहीं समझ पाते कि कृष्ण-को भूलकर स्वयं मायाकल्पित कृष्ण बननेकी चेष्टाके फलस्वरूप ही भगवान श्रीकृष्णकी गुणमयी महा-माया "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया" उन्हें सत्त्व, रजः और तमः गुणरूप रज्जूके द्वारा बाँधकर कर्म-चक्रमें घुमा रही है। यद्यपि समस्त कर्म कर्मियोंके गुणगत भोगाकांक्षाके अनुरूप माया द्वारा प्रकटित हैं तथापि मूढ़ कर्मीगण अपनेको ही कर्त्ता मानकर इन्द्रियग्राह्य सुख-दुखोंका स्वयं ही भोक्ता बन बैठते हैं।

भगवान श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि जीवमात्र उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं। अंशका कार्य है—पूर्णकी सेवा करना। जैसे हाथ, पैर, आँख, कान, नाक इत्यादि शरीरके अंश हैं, परन्तु पेटमें भोजन न देने से वे स्वयं काम नहीं कर सकते। यदि हाथ, पैर आदि इन्द्रियाँ ऐसा न करें तो इसका परिणाम अत्यन्त अहितकर ही होगा। उदर-पूर्त्तिके अभावमें इन्द्रियाँ क्रमशः क्षीण हो जाती हैं। हितोपदेशके "उदरेन्द्रियाणां" उपाख्यानमें इसी तथ्यको समझाया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण जगत्‌रूपी विराट् शरीरके, प्राण स्वरूप हैं। 'भगवान् जगतरूप वृक्षके मूल कारण हैं—ऐसा गीतामें बार-बार दुहराया गया है। जैसे—(१) "मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय" (७।७), २) "अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च" (९।२४), (३) न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः" (७।१५) आदि। इसलिये यह बात पूर्णतः संदेहरहित है कि भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमेश्वर है। और जीवमात्र उनका सेवक है। हम इसे भूलकर अपनी इन्द्रियोंको भगवानकी सेवामें न लगाकर स्वयं भगवान बनकर संसारको भोग करने की आशामें मत्त हैं। यही माया या भ्रम है। जग-न्नाथ (भगवान) को छोड़कर जगत्‌की जो सेवा की जाती है, वह केवल पागलपन ही है।

आजकल रामराज्य परिषद्‌का कुछ-कुछ कार्य देखा जाता है, किन्तु इस रामराज्यमें रामका कोई

पता ही नहीं चलता है। रावणका दल रामचन्द्रको मारनेकी चेष्टामें हैं। हम यह समझ नहीं पाते कि ऐसी कुचेष्टाके बीच रामराज्यकी स्थापना कैसे हो सकती है ?

यदि रामराज्य स्थापन करना है, तो विश्वकी सभी वस्तुओंको भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवामें लगाना होगा। रामको या रामके राज्यको समाप्त करनेकी चेष्टा केवल रावण-राज्यमें ही है। राम सेवक हनुमानजीके द्वारा ऐसी चेष्टाएँ विध्वंशकी जाती हैं। इसके लिये भगवान श्रीकृष्णके द्वारा उपदिष्ट कर्मयोगका आश्रय लेना होगा।

मूढ़ कर्मसंगीगण जिस प्रकार अविद्वान् हैं, तत्त्वविद्‌गण उसके ठीक विपरीत विद्वान् होते हैं। तत्त्ववित् व्यक्ति यह जानते हैं कि प्रकृतगत गुण-कर्म आत्मतत्त्वसे सम्पूर्णरूपसे पृथक हैं। इसलिये वे अविद्वान् व्यक्तिकी भाँति गुणकर्मका संग न कर केवल यज्ञके लिये ही कर्म करते हैं। वे सर्वदा देहाभिमानसे दूर रहकर आत्मधर्मको जगानेकी चेष्टा करते हैं। वे जानते हैं कि जीवका जड़ा प्रकृतिसे सम्बन्ध घटनावशतः हो गया है। इसलिये यद्यपि आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियाँ जड़ कार्यमें लगी हुई हैं, तत्त्वविद् व्यक्ति सदैव उन सभी कार्योंसे दूर रहते हैं।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुण-कर्म - विभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥
(गीता ३।२८)

इस प्रकारकी मुक्तावस्था लाभ करनेका उपाय भगवान श्रीकृष्णने गीतामें बतलाया है:—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥
(गीता ३।३०।३१)

"मैं शरीर या मन हूँ" या "मैं प्राकृत वस्तु हूँ", अथवा "मेरे शरीरसे सम्बन्धित सारी वस्तुएँ मेरी ही हैं",—ऐसे तत्त्व-ज्ञान शून्य विचारके कारण ही हम विद्वान् हो नहीं पाते। भगवान श्रीकृष्णने इसलिये हमें आध्यात्म चेता आत्मस्थ होनेका परामर्श दिया है। अध्यात्म चेता होनेसे ही हम यह समझ सकते हैं कि मैं प्राकृत शरीर या मन नहीं हूँ, मैं तो पराप्रकृति संभूत चित्‌वस्तु हूँ। चित्‌तत्त्वकी उपलब्धि से अनायास ही जड़ वस्तुओंके प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। क्रमशः चित्‌तत्त्वकी निर्मलता प्राप्त होने पर हम प्राकृत मात्रास्पर्शसे उत्पन्न सुख-दुःखसे छुटकारा पा सकते हैं। प्राकृत अहङ्कारसे मुक्त होने पर हम "सर्वोपाधि विनिर्मुक्त" होकर परमतत्त्ववस्तु भगवानकी सेवामें तत्पर होकर परम निर्मलताको प्राप्तकर संसार - महादावाग्निकी विषम ज्वालाओंसे छुटकारा पा सकते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं, इस विषयके समस्त शास्त्रोंमें ही प्रमाण भरे पड़े हैं। भारतवर्षके बाहर दूसरे दूसरे देशोंमें बाइबिल, कुरानादि शास्त्रोंमें भी श्रीकृष्णको ही परतत्त्व बताया गया है। भगवद्‌गीताकी तो बात ही नहीं है; क्योंकि वहाँ पर भगवान्‌ने स्वयं कहा है— मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय" (७।७)। अतएव उनसे अगर हमारा सम्पर्क हो जाय, तब हम चित्‌सूर्यका दर्शन

कर सकते हैं। सूर्यके उदित होनेसे सूर्यके किरणोंसे ही समस्त वस्तुएँ यथायथ प्रकाशित होती हैं। शुद्ध सत्त्वरूपी आकाशमें कृष्णरूप सूर्यका उदय होनेसे ही मायारूप अन्धकार साथ ही साथ दूर हो जाता है, और मायान्धकारके दूर होनेसे ही हृदय निर्मल हो जाता है। यद्यपि इन सभी बातोंका मूढ़ व्यक्ति विपरीत अर्थ कर सकते हैं, तथापि यह कोई कल्पना नहीं है, बल्कि यथार्थ सत्य हैं। जिन्होंने कृष्ण या कृष्णदासका आनुगत्य ग्रहण किया है, केवल उन्होंने ही इन सब बातोंकी सत्यता उपलब्धि की है। परन्तु जो व्यक्ति भगवान श्रीकृष्णके प्रति हिंसा रखकर स्वयं कृष्ण होनेका प्रयास करते हैं, ऐसे विकृत बुद्धि-युक्त मूर्ख व्यक्ति इसकी उपलब्धि कर नहीं पाते। ये सभी व्यक्ति अत्यन्त मूढ़ एवं अवज्ञाकारी हैं—"अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्" (गीता ९।११)। ऐसे व्यक्ति कृष्णके प्रति हिंसा करनेवाले हैं। इनकी माया-कलुषित बुद्धिमें सहज हीमें भगवत् तत्त्वका प्रवेश हो नहीं पाता।

श्रद्धावान सुकृतिसम्पन्न सरल वैष्णवगण ही श्रीमद्भगवत् गीताका यथार्थ अर्थ समझते हैं। गीताकी सरल बातें सूर्यके प्रकाशकी तरह स्वतःसिद्ध हैं। उसमें मायावादरूपी अन्धकारका कोई स्थान नहीं है। ऐसे सरल व्यक्ति उन उपदेशोंका गौण अर्थ नहीं करते। वे 'अध्यात्मिक' कहे जानेवाले मायावादी अर्थ करनेकी कुचेष्टा नहीं करते। कृष्णदासगण ही "मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य" इत्यादि मत या विचारोंको सम्पूर्ण रूपसे ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं। वे स्वयं कर्मयोगका आचरण कर कर्मबन्धनरूप महाभयसे सदाके लिए छुटकारा पा लेते हैं।

इस प्रकारके श्रद्धावान व्यक्ति किसी देश-विशेष, जाति-विशेष या समाज विशेषमें आबद्ध नहीं होते। भगवद्भक्त कार्ष्णगण जाति, धर्म, समाज या देशसे अतीत हैं। भगवान मनुष्य निर्मित किसी सीमामें आबद्ध नहीं हैं। इसलिए गीताके उपदेशोंको संसारके सभी मनुष्य ही ग्रहण कर सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९।३२)

अर्थात "हे पार्थ! अन्त्यज कहे जानेवाले म्लेच्छगण, वेश्यादि पतित स्त्रियाँ तथा वैश्य-शूद्र इत्यादि नीच वर्णके व्यक्ति भी यदि मेरी अनन्य-भक्तिका आश्रय लेते हैं, तो वे भी जल्दी ही परा-गतिको प्राप्त करते हैं।" आपस्वार्थ परायण आसुरिक मतानुसार जो जातिवर्णादि सम्बन्धमें व्यभिचार चल रहा है वह भगवान कृष्णके लिए प्रतिबन्धक नहीं हो सकता।

शास्त्रसम्मत जाति वर्णादिके सम्बन्धमें भगवान श्रीकृष्णने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(गीता ४।१३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-शूद्रादि चार वर्ण जन्म-गत नहीं हैं, बल्कि गुण और कर्मानुसारसे विभक्त हैं। उदाहरणके लिए कोई व्यक्ति जन्मसे ही चिकित्सक नहीं बनता, परन्तु गुण और कर्मके द्वारा ही बनता है। त्रिगुणात्मक संसारमें गुणगत, कर्मगत जाति-

भेद सर्वत्र ही अनादिकालसे वर्तमान है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—शूद्रादि वर्ण जन्मगत नहीं थे। गुण और कर्मके अनुसार ही चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि हुई थी।

जैसे चिकित्सक समस्त देशोंमें सब समय ही रहते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण सभी देशोंमें सर्वकाल ही वर्तमान हैं। ब्राह्मणादि वर्णमें उत्पन्न व्यक्ति ही ब्राह्मणादि नहीं कहला सकते।

वर्णाभिव्यंजक लक्षण सभी शास्त्रोंमें ही बतलाया गया है। अतएव ब्राह्मणादि वर्णको किसी देश या जातिके रूपमें देखना निःसन्देह ही भूल है। शौक विचारकी सीमामें आबद्ध रहकर भारतीय सभ्यताको कूपमंडूककी तरह न रखकर भारतके ऋषियोंकी यथार्थ वाणीका उदारतापूर्वक सारे संसारमें प्रचार किया जाता, तो आज संसारमें सुख शान्तिका अभाव नहीं रहता। ब्राह्मण्य धर्मके प्रचार-प्रसारसे ही संसारमें सुख और शान्ति मिल सकती है। किन्तु ऐसा न कर चिकित्सकका पुत्र ही चिकित्सक होगा (यद्यपि उसमें ऐसे गुण और कर्म नहीं हैं)—इस प्रकारकी भूलने ब्राह्मण्य धर्मको शौक्र विचारके अधीन कर उसे नष्ट कर संसारका बहुत कुछ अहित ही किया है। श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवने उसी ब्राह्मण्य-धर्मको जैव-धर्म कह कर प्रचार कर जगत्‌के लिए प्रचुर सुख-शान्तिका पथ खोल दिया है। भाग्यवान व्यक्ति उस दैव-वर्णाश्रममें प्रतिष्ठित होकर अपनेको कृतार्थ कर सकते हैं।

अदैव-वर्णाश्रम धर्म और भगवानके द्वारा प्रकटित दैव-वर्णाश्रम धर्म एक नहीं हैं। शास्त्रोक्त वर्णविभाग सभी देशोंमें एवं सभी कालोंमें एक ही प्रकारका है। शास्त्रकी दृष्टिसे देखने पर सर्वत्र ही संसारमें ब्राह्मण-क्षत्रियादि चारों वर्ण पाये जाते हैं। गुण-कर्मके विभागसे ब्राह्मणोंके लक्षणोंसे युक्त मनुष्य सर्वत्र ही कम पाये जाते हैं। उसी प्रकार गुण-कर्मके विभागसे सर्वत्र ही क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि वर्ण देखे जाते हैं। इसलिए सभी स्थानोंमें एवं सभी कालोंमें इस प्रकारके गुण-कर्म विभागयुक्त चतुर्वर्ण हैं, पहले भी थे, और भविष्यमें भी रहेंगे। (क्रमशः)

—निवन्धि स्वामी श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

श्रीभक्तिविनोद-वाणी

जबतक जीवके परम सौभाग्यका उदय नहीं होता, तबतक उसकी कृष्णोन्मुखी प्रवृत्तिका उदय नहीं होता। इस विषयमें जीवकी सहायता करना ही वैष्णवकी हृदयगत जीव-दयाका एकमात्र परिचय है। जीवको कृष्णोन्मुख करना ही वैष्णवोंका प्रधान कार्य है। जहाँ स्थूल शरीरकी रोग-निवृत्ति या क्षुधा-निवृत्ति करना ही प्रधान उद्देश्य होता है, वहाँ वैष्णवताका अभाव समझना चाहिए।"

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा

नवां परिच्छेद

जीव और जड़ सबका कृष्णसे युगपत् भेद और अभेद दोनों ही है

वेद और वेदान्तकी आलोचना करके आचार्यों ने दो प्रकारके सिद्धान्तोंको अपनाया है। दत्तात्रेय, अष्टावक्र और दुर्वासा आदि ऋषियोंके अनुगत सिद्धान्तको ग्रहण करके श्रीमद्शंकराचार्यने केवलाद्वैत मतका प्रचार किया है। यह एक प्रकारका सिद्धान्त है। दूसरी ओर नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, मनु आदि महात्माओंके अनुगत सिद्धान्तको लेकर वैष्णवाचार्योंने शुद्ध भक्तितत्त्वका प्रचार किया है। यही दूसरे प्रकारका सिद्धान्त है। भक्ति सिद्धान्त चार प्रकारके हैं—(१) श्रीरामानुजाचार्यने "विशिष्टाद्वैत" के मतानुसार भक्तिका प्रचार किया है। (२) श्रीमध्वाचार्यने "शुद्धद्वैत" मतके अनुसार भक्तिका प्रचार किया है। (३) श्रीनिम्बादित्याचार्यने "द्वैताद्वैत" के मतानुसार भक्तिका प्रचार किया है और (४) श्रीविष्णुस्वामीने "शुद्धाद्वैत" के मतानुसार भक्तिका प्रचार किया है। ये चारों ही आचार्यगण शुद्ध भक्तिके प्रचारक हैं। (१) श्रीरामानुजके मतसे—चित् (जीव) और अचित् (जड़ जगत्)—इन दो विशेषणोंसे विशिष्ट होकर एकमात्र ईश्वर ही वस्तु हैं। (२) श्रीमध्वके मतसे—जीव ईश्वरसे पृथक तत्त्व है; परन्तु ईशकी भक्ति ही जीवका स्वभाव है। (३) श्रीनिम्बादित्यके मतसे—जीवका ईश्वरसे युगपत् भेद और अभेद दोनों ही है। अतएव अभेदकी भाँति भेदकी भी नित्यता है। और (४) श्रीविष्णुस्वामीके मतानुसार—वस्तु एक होने पर भी वास्तव में ब्रह्मता और जीवता नित्य पृथक् है। इस प्रकार परस्पर भेद रहने पर भी इन सबने भक्तिका नित्यत्व, भगवानका नित्यत्व, जीवका नित्य-दासत्व, चरम अवस्थामें प्रेमगतिको स्वीकार किया है। इसलिये वे सभी मूलतत्त्वमें वैष्णव हैं, परन्तु मूलतत्त्वमें वैष्णव होनेपर भी उनके सिद्धान्त कुछ-कुछ पृथक रहनेके कारण असम्पूर्ण हैं। साक्षात् भगवान श्रीचैतन्यदेवने अवतीर्ण होकर उन चारोंकी वैज्ञानिक असम्पूर्णता को दूर कर पूर्णतम-विज्ञान—शुद्धभक्तितत्त्वकी शिक्षा दी है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें उस पूर्णतम विज्ञानका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

व्यासेर सूत्रेते कहे परिणाम-वाद।
'व्यास भ्रान्त' बलि ताँहा उठाइल विवाद॥
परिणामवादे ईश्वर हयेन विकारी।
एत कहि विवर्तवाद स्थापना ये करि॥
वस्तुतः परिणामवाद सेइ त प्रमाण।
'देहे आत्मबुद्धि'—एई विवर्तेर स्थान॥
अविचिन्त्य शक्ति-युक्त श्रीभगवान्।
तथापि अचिन्त्यशक्त्ये हय अधिकारी॥
प्राकृत-चिन्तामणि ताहे दृष्टान्त धरि।
नाना रत्न-राशि हय चिन्तामणि हैते।

तथापिह मणि रहे स्वरूपे अविकृते ॥
बृहद्वस्तु ब्रह्म कहि श्रीभगवान् ।
षड़विध ऐश्वर्य पूर्ण परतत्त्व धाम ॥
ताँरे निर्विशेष कहि, चिच्छक्ति ना मानि ।
अर्द्ध-स्वरूप ना मानिले, पूर्णता हय हानि ॥
आपादान, करण, अधिकरण-कारक तीन ।
भगवानेर सविशेष एइ तीन चिह्न ॥
षड़ैश्वर्य पूर्णानन्द विग्रह याँहार ।
हेन भगवाने तुम कह निराकार ??

श्रीवेदव्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रमें परिणामवाद का ही उपदेश है—विवर्तवादका नहीं। परन्तु शंकराचार्यने यह सोचकर कि परिणामवाद स्वीकार करने से ईश्वर विकारी हो पड़ते हैं। वेदान्त सूत्रोंका अर्थ बदल कर विवर्तवादकी स्थापना की है। परिणाम और विवर्त—इन दोनों शब्दोंका अर्थ सदानन्द-योगेन्द्रकृत वेदान्तसारमें इस प्रकार लिखा है—

सतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विकार इत्युदीरितः ।
अतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विवर्त इत्युदाहृतः ॥

(४१ संख्या)

—कोई सत्य वस्तु दूसरा रूप ग्रहण करने पर उसमें जो पृथक बुद्धि होती है, उसका नाम परिणाम वाद है। परिणाम एक विकार मात्र है। जैसे—दूध एक सत्य वस्तु है। उससे दही होता है। दही दूधका विकार मात्र है, कोई दूसरी वस्तु नहीं है। परन्तु जहाँ कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, फिर भी उसीमें कोई दूसरी वस्तु होनेका जो भ्रम होता है, उसीको विवर्त कहते हैं, जैसे—रज्जुमें सर्पका भ्रम। अर्थात् सर्प नहीं है, फिर भी अन्धकार आदिके कारण रस्सीमें ही सर्प होनेका जो भ्रम होता है, उसे विवर्त कहते हैं। इसी विचारको ग्रहण करके शङ्कराचार्यके अनुयायीगण यह कहते हैं कि जीव और जगत् ईश्वरके कदापि परिणाम नहीं हो सकते। यदि इनको परिणाम स्वीकार किया जाता है तो ईश्वरको भी विकारी स्वीकार करना पड़ेगा अर्थात् यह जगत् ईश्वरकी एक विकृत अवस्था है—ऐसा मानना पड़ेगा। जिस प्रकार दूध अम्लके संयोगसे विकृत होकर दधि होता है, जगतको भी उसी प्रकार ईश्वरकी विकृति मानना पड़ेगा। परन्तु शास्त्रोंमें ईश्वरको अविकारी कहा गया है। इसलिये परिणामवाद स्वीकार करने योग्य नहीं है। सर्प नहीं है, फिर भी अज्ञानताके कारण अथवा भ्रमवश एक रज्जु (रस्सी) में सर्पकी प्रतीति होती है और उसके भयसे नाना प्रकारकी फलोत्पत्ति होती है। जगत भी इसी प्रकार भ्रमजनित कल्पित है। संसार नहीं है। फिर भी अज्ञानके कारण भ्रमवशतः जगत्की प्रतीति हो रही है; वह एक वस्तुकी भाँति बोध होता है। इसीको विवर्त कहते हैं। इस विचारको माननेसे ईश्वरको विकारी नहीं मानना पड़ता है। इस प्रकारके सिद्धान्तके द्वारा विवर्तवादकी स्थापना हुई है।

इस विषयमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा यह है कि विवर्तवादके लिये स्थल नहीं है। वास्तविक बात यह है कि जीव जड़ शरीरमें जो आत्म-बुद्धि करता है, उसके लिये रज्जुमें सर्पका उदाहरण प्रयुज्य है और शास्त्रोंमें इसी स्थलको विवर्तक कहा है। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि जड़ शरीर मिथ्या नहीं है। अतएव ईश्वर ही विवर्तके कारण जड़ शरीर या जड़ जगत् अथवा जीवके रूपमें भासते हैं—यह

सिद्धान्त अत्यन्त तुच्छ और दोषपूर्ण है। श्रीवेद-व्यासके सूत्रोंमें स्पष्टरूपसे परिणामवादको स्वीकार किया गया है। परिणामवादको अस्वीकार करनेसे सर्वज्ञ व्यासदेवको भ्रान्त मानना होता है। वास्तवमें जिस प्रकार दूध दधिके रूपमें परिणत हो जाता है उसी प्रकार ईश्वरकी अचिन्त्यशक्ति भी ईश्वरकी इच्छासे जीव और जड़ (जगत्) के रूपमें परिणत हुई है। ईश्वर या ब्रह्मका परिणाम नहीं होता; बल्कि उनकी अचिन्त्यशक्तिके विचित्र प्रभावसे जो परिणति होती है, उससे ईश्वर कदापि विकारी नहीं होते। यद्यपि कोई भी प्राकृत वस्तु अप्राकृत तत्त्वको ठीक ठीक समझानेके लिये सम्पूर्णरूपसे उदाहरण नहीं बन सकती है, फिर भी किसी अंश विशेषके लिये उपाहृत होकर अप्राकृत तत्त्वके उसी अंश विशेषका तो वह स्पष्ट कर ही सकती है। इसरूपमें ब्रह्मकी अविकारिताके लिये प्राकृत चिन्तामणिका दृष्टान्त दिया जा सकता है। प्राकृत चिन्तमणि नाना प्रकारकी रत्नराशिको उत्पन्न करके भी स्वयं अविकृत रहती है। अप्राकृत-तत्त्वमें ईश्वरकी सृष्टिको भी उसी प्रकार समझ लीजिये। अनन्त जीवमय जैवजगत एवं चौदहों लोकोंके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्डोंके अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे इच्छा करते ही सृजन करके भी परमेश्वर स्वयं सर्वथा विकार शून्य ही रहते हैं। 'विकार शून्य' शब्दके प्रयोगका तात्पर्य यह नहीं है कि वे केवल निर्विशेष हैं। बृहद्वस्तु ब्रह्म सदा-सर्वदा षड्ऐश्वर्यपूर्ण भगवत्स्वरूप हैं। उनको केवल निर्विशेष कहनेसे उनकी चित्शक्ति स्वीकृत नहीं होती। अचिन्त्यशक्ति द्वारा वे नित्य सविशेष और निर्विशेष दोनों ही हैं। केवल निर्विशेष माननेसे उनका केवल अर्द्धस्वरूप ही मानना होता है तथा उससे उनकी पूर्णताकी हानि होती है। श्रुतिओंने उन परमतत्त्वमें अपादान, करण और अधिकरण—तीन कारकत्वका विशेषरूपसे वर्णन किया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।
(तैत्तिरीय ३।१)

—'जिनसे समस्त प्राणीसमुदाय उत्पन्न हुआ है—इससे ईश्वरमें अपादानकारकत्व सिद्ध हुआ है। 'जिनके द्वारा सभी जीवित हैं—इससे उनमें करण-कारकत्व सिद्ध है तथा 'जिनमें गमन और प्रवेश करता है'—इससे ईश्वरमें अधिकरणकारकत्व सिद्ध है। इन तीन लक्षणोंसे परतत्त्व विशिष्ट हैं। ये तीन उनके विशेष हैं। अतएव भगवान् सर्वदा सविशेष हैं। ऐसे भगवान् कदापि केवल निराकार नहीं हो सकते। षड्ऐश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द-स्वरूप ही उनका नित्य अप्राकृत आकार है।

श्रीजीव गोस्वामीने स्वरचित भगवत सन्दर्भमें (संख्या १६) भगवत - तत्त्वके विचार - प्रसंगमें लिखा है—

'एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैव-स्वरूप-तद्रूप-वैभव-जीव-प्रधान-रूपेण चतुर्द्धावतिष्ठते, सूर्यान्तर मण्डलस्थित तेजोइव, मण्डल, तद्बहिर्गत तद्रश्मि, तत्प्रतिच्छविरूपेण।'

परम तत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्य-शक्तिसे सम्पन्न हैं। उसी शक्तिसे वे सदैव चार रूपोंमें विराजमान हैं—(१) स्वरूप, (२) तद्रूपवैभव, (३) जीव और (४) प्रधान। सूर्यमण्डलस्थ तेज,

सूर्य-मण्डल, उनकी बहिर्गत रश्मि और उनकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये चारों कुछ अंशोंमें उदाहरणके स्थल हैं। सच्चिदानन्द-मात्र-विग्रह ही उनका स्वरूप है। चिन्मय धाम, नाम, संगी तथा उनके व्यवहारमें आनेवाले उपकरणसमूह ही स्वरूपवैभव हैं। नित्यमुक्त और नित्यबद्ध असंख्य जीव हैं। माया, प्रधान और उससे उत्पन्न समस्त जड़ीय स्थूल और सूक्ष्म जगत् ही 'प्रधान' शब्दवाच्य हैं। ये चारों प्रकाश नित्य परमतत्त्वके एकत्वके ही प्रतिपादक हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि परमतत्त्व-में नित्यविरुद्ध व्यापार एक ही साथ कैसे विद्यमान रह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि जीवकी बुद्धि सीमाविशिष्ट है; अतः उसके द्वारा भगवत् तत्त्वको जानना असंभव है; उसे तो परमेश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिकी कृपा द्वारा ही जानना संभव है।

श्रीजीव गोस्वामीने इस मतको 'सर्वसंवादिनी'-ग्रन्थमें अचिन्त्य-भेदाभेदात्मक बतलाया है। निम्बार्क मतमें जो भेदाभेद अर्थात् द्वैताद्वैत-मत है, वह अपूर्ण है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा लाभकर वैष्णव जगत्ने भेदाभेदमतकी पूर्णताको पाया है। श्रीमध्वाचार्यके मतमें 'सच्चिदानन्द-नित्यविग्रह' स्वीकृत है। वह सच्चिदानन्द-विग्रह ही इस अचिन्त्य भेदाभेदकी मूल आधारशिला होनेके कारण श्रीचैत-न्यमहाप्रभुजीने श्रीमध्व-सम्प्रदायको ही अंगीकार किया है। पूर्व वैष्णवाचार्योंके प्रचारित दार्शनिक मतोंमें कुछ-कुछ वैज्ञानिक अपूर्णता रहनेके कारण उनमें परस्पर वैज्ञानिक भेद हैं। इसी वैज्ञानिक भेदसे ही सम्प्रदाय भेद हैं। साक्षात् परतत्त्व श्रीचैतन्यमहा-प्रभुजीने अपनी सर्वज्ञताके बलसे उन सभी मतोंकी असम्पूर्णताओंको पूर्णकर श्रीमध्वके 'सच्चिदानन्द नित्य-विग्रहको, श्रीरामानुजाचार्यके शक्तिसिद्धान्तको, श्रीविष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैतसिद्धान्त तथा तदीय सर्वस्वत्वको और निम्बार्कके नित्यद्वैताद्वैत सिद्धान्त को निर्दोष और पूर्ण कर अपना अचिन्त्य-भेदा-भेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध वैज्ञानिक मत जगत्को कृपा करके प्रदान किया है। कुछ ही दिनोंमें भक्ति-तत्त्वमें केवल एक ही सम्प्रदाय रहेगा; उसका नाम होगा—'श्रीब्रह्मसम्प्रदाय'। दूसरे सभी सम्प्रदाय इसी ब्रह्मसम्प्रदायमें मिलकर एक हो जायेंगे। इस विषय में निम्नलिखित कारिकायें हैं—

सर्वत्र श्रुतिवाक्येषु तत्त्वमेकं निरूपितम्।
नाविद्याकल्पितं विश्वं न जीवनिर्मितं किल॥
अतत्त्वतोऽन्यथा बुद्धिर्विवर्त्त इत्युदाहृतः।
सतत्त्वे विश्व एतस्मिन् विवर्तो न प्रवर्त्तते॥
अचिन्त्यशक्तियुक्त परेशस्येक्षणात् किल।
मायातन्त्र्या पराशक्तिः सूयते सचराचरम्॥
भेदाभेदात्मकं विश्वं सत्यं किन्तु विनश्वरम्।
न तत्र जीवमायानां नित्यत्वञ्चैव च॥
न ब्रह्म-परिणामो वै शक्तेः, परिणतिः किल।
स्थूल-लिङ्गात्मकं विश्वं भोगायतनमात्मनः॥

सम्पूर्ण वेदवाक्योंकी आलोचना करके देखने पर एक सनातन-तत्त्वको जाना जाता है। वह सना-तन तत्त्व यह है कि यह विश्व सत्य है, अविद्याद्वारा कल्पित मिथ्या वस्तु नहीं है। यह परमेश्वरकी निरंकुश इच्छासे उत्पन्न हुआ है—जीव द्वारा निर्मित नहीं है। किसी मिथ्या पदार्थमें सत्यका भास होना

ही 'विवर्त' है। जगत् नश्वर होने पर भी सत्य है; अचिन्त्यशक्तिमान ईश्वरके ईक्षण अर्थात् इच्छा करते ही उत्पन्न हुआ है। इसमें विवर्तका स्थल नहीं है। परमेश्वरकी माया नामक अपराशक्तिने परमेश्वरकी इच्छानुसार इस स्थावर-जंगममय सम्पूर्ण जड़ जगत-को उत्पन्न किया है। सारा विश्व ही अचिन्त्यभेदा-भेदात्मक है। विश्व सत्य होने पर भी नित्यसत्य नहीं है। 'नित्यो नित्यानां' (क० २।२३, श्वे० ६।१०) इस श्रुतिमंत्रद्वारा यही प्रमाणित होता है। केवल भेद अथवा केवल अभेदवाद एवं शुद्ध द्वैत या विशिष्टाद्वैतवाद—ये सभी श्रुतिशास्त्रोंके एकदेशीय विचार हैं; साथ ही अन्यदेशविरुद्ध हैं। परन्तु अचि-न्त्यभेदाभेद-मत वेदका सर्वाङ्गीण पूर्णतम सिद्धान्त है। यही मत जीवकी स्वतःसिद्ध श्रद्धाका आस्पद और साधुयुक्ति-संगत है। इस जड़ जगतसे जीवका नित्य सम्बन्ध नहीं है। जगत् परब्रह्मकी शक्तिका परिणाम है; वस्तुका परिणाम नहीं है। यह स्थूल-लिङ्गात्मक विश्व जीवका भोगायतन मात्र है।

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीरथ-यात्रा-महोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इसवर्ष भी श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें श्रीजगन्नाथ देवका श्रीरथयात्रा-महोत्सव महासमारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। २२ जूनको गुण्डिचा-मंदिर-मार्जन, २३ जूनको श्रीरथ-यात्रा, २७ जूनको हेरापंचमी, श्रीलक्ष्मी-विजय तथा १ जुलाईको पूर्णयात्राके महोत्सव मनाये गये हैं। अंतिम दिन पूर्णयात्राके दिन विविध प्रकारका भग-वत् प्रसाद वितरण किया गया। उत्सवकालमें प्रति-दिन शामको १०८ श्रीश्रीआचार्यदेवका श्रीमद्भागवत-प्रवचन होता था। इसके अतिरिक्त त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवारिधि पुरी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज तथा श्रीहरि ब्रह्मचारी आदिके भाषण, प्रवचन तथा छाया-चित्रके माध्यमसे श्रीगौरलीला एवं कृष्ण लीलाकी शिक्षाओं पर विशदरूपसे प्रकाश डाला गया।

तिरोभाव-महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके देशव्यापी सभी शाखामठोंमें ६ आषाढ़ शुक्रवारको श्रीगौरशक्ति श्री-गदाधर पण्डितजी तथा वर्तमानयुगमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित विशुद्ध प्रेमधर्मका पुनः प्रचार करनेवाले गौरपार्षद सप्तम गोस्वामी श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका, ८ आषाढ़को श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामीका, २१ आषाढ़को श्रीसनातन गोस्वामीका, २२ आषाढ़को श्रीलप्रबोधानन्द सरस्वतीपादका, २६ आषाढ़को श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका तथा २६ आषाढ़ को श्रीलोकनाथ गोस्वामीका विरह (तिरोभाव) महोत्सव मनाया गया है। उन उन दिनोंको सर्वत्र ही उनके अप्राकृत जीवन चरित्र तथा उनकी लोक-पावनी शिक्षाओंकी आलोचना की गयी है।

—प्रकाशक

मनुष्य किसे कहते हैं

[१०८ श्रीश्रीआचार्यदेवके भाषणके अवलम्बन पर]

मनुष्य किसे कहते हैं? यह प्रश्न सुननेके साथ-ही-साथ हृदयमें दो हाथ, दो पैर, दो आँख और दो कान आदि अङ्गोंवाले एक प्राणीका चित्र खिंच जाता है। इसी प्राणीको मनुष्य कहते हैं। समस्त प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता है। हमारे मनीषियोंने क्या इसी दो पैरों, दो हाथों आदि वाले प्राणीको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया है? इस प्रश्नके उत्तरमें हमें कुछ आलोचनाकी आवश्यकता है।

जिसको प्राण है, उसे प्राणी कहते हैं। प्राणीमात्रका जन्म, वृद्धि और विनाश है। कीट, पतंग, पेड़, पौधे आदिकी तो बात ही क्या, पहाड़ोंके भी जन्म, वृद्धि और विनाश हैं। अतएव ये सभी प्राणी हैं। बहुतसे पहाड़-पर्वत पहलेपहल मिट्टीके नीचे ही पैदा होकर क्रमशः बढ़ते-बढ़ते धरतीके ऊपर दिखलायी पड़ते हैं तथा फिर बढ़ते-बढ़ते विराट आकार धारण कर आकाशको चूमने लगते हैं। इससे ऐसा समझना होगा कि पहाड़ोंके भी प्राण होते हैं। परन्तु जब उनका बढ़ना रुक जाय तथा जब वे टूट-टूटकर गिरने लगें तो समझना चाहिए कि उनके प्राण निकल गये हैं। पत्थरोंके प्राण होते हैं तथा वे भी प्राणी होते हैं, रामायणमें इसका प्रमाण है। महर्षि गौतमकी पत्नीका नाम अहल्या था। अहल्या अपने पतिके शापसे पत्थर-योनिको प्राप्त हुई थीं। पीछेसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके चरणकमलोंके स्पर्शसे वे फिर पूर्वरूप—नारीरूपको प्राप्त हुई थीं। विन्ध्याचल पर्वत आज भी अगस्त्य मुनिकी आज्ञाका पालन करते हुए अपने ऊँचे मस्तकको झुका कर उसी अवस्थामें खड़ा है। इस प्रकार नाना-प्रकारके प्राणी इस पृथ्वीतल पर देखे जाते हैं। इन प्राणियोंको चार भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) स्वेदज=पसीनेसे पैदा होनेवाले प्राणी, (२) अण्डज=अण्डोंसे पैदा होने वाले प्राणी, (३) उद्भिज=भूमिको फोड़कर उत्पन्न होनेवाले लता, गुल्म, वृक्ष आदि प्राणी, और (४) जरायुज—जरायु (झिल्ली) में लिपटा हुआ गर्भसे उत्पन्न होनेवाला प्राणी।

"जीवो जीवस्य जीवनम्"—अर्थात् एक प्राणी दूसरे प्राणीका जीवन है। तात्पर्य यह है कि एक प्राणी दूसरे प्राणीको खाकर अपना जीवन धारण करता है। तिमिंगल आदि बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियोंको खा जाती हैं। दूसरे-दूसरे प्राणियोंकी तो बात ही क्या, एक श्रेणीके मनुष्य भी दूसरे मनुष्योंको पकड़ कर खा जाते हैं। अंधकाराच्छन्न अफ्रिकाके घने जंगलोंमें रहनेवाले मनुष्य ऐसे भयानक होते हैं, जो विदेशी मनुष्योंको देखते ही उनपर टूट पड़ते हैं और उनके कच्चे मांसको ही खा जाते हैं। हमारे देशमें बहुतसे इरानी फिरके इधर-उधर भ्रमण करते हुए पाये जाते हैं। वे लोग जीवित छिपकीलियोंको पकड़कर कुछ देर उसे अपने बगलमें रखकर गरम कर कच्ची अवस्थामें ही दाँतोंसे कच्ची मूलीकी भाँति खा जाते हैं। कुछ

पहाड़ी जातियोंके मनुष्य भी अपने बूढ़े माता-पिता-को मार कर उनका मांस खा जाते हैं। संथाल लोग साँप, मेंढ़क आदि अखाद्य प्राणियोंको बड़े चावसे खाते हैं। किसी किसी दुर्गम पहाड़ी स्थानोंमें 'कुकुर -पीठा' नामक एक विचित्र प्रकारका खाद्य पदार्थ तैयार कर खाया जाता है। एक भूखे कुत्तेको चावल और गुड़ मिलाकर खूब पेट भरकर खिलाया जाता है। उसका पेट पूरा भर जानेपर उसे मार डालते हैं। तदनन्तर मृत कुत्तेको आगमें पकाकर उसके पेटको फाड़कर गुड़ मिश्रित चावलको निकालकर बड़े चावसे खाते हैं। अतएव संसारमें नाना प्रकार-की प्रवृत्तियोंके मनुष्य हैं—जिनके जीवन-निर्वाहकी प्रणालीको सुनकर आश्चर्य होता है।

उपरोक्त विभिन्न-प्रकारकी प्रवृत्तिवाले प्राणियोंके जीवननिर्वाहकी प्रणालीको बतलाना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारा उद्देश्य तो यह बतलाना है कि कौन सा प्राणी मनुष्य शब्दवाच्य है।

शास्त्रकारोंका कहना यह है कि प्राणी नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेनेके पश्चात् मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। अर्थात् अस्सीलाख प्रकारकी योनियोंमें भटकनेके पश्चात अन्यान्य प्राणी मनुष्य जन्मको प्राप्त होते हैं। मनुष्य योनि एक ही प्रकारकी नहीं होती। वह चार लाख प्रकारकी होती है। मैंने ऊपरमें मनुष्योंकी जिन नस्लोंकी चर्चा की है, वे चार लाख किस्मोंके ही अन्तर्गत हैं। इस विषयमें शास्त्रका विचार बड़ा ही स्पष्ट है—

जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः।
कृमयो रुद्रसंख्यकाः पक्षिणां दशलक्षकम्।
त्रिंशल्लक्षाणि पशवः चतुर्लक्षाणि मानवाः॥
(विष्णुपुराण)

अर्थात् प्राणियोंका जिन चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें जन्म होता है उनमेंसे मछली आदि जल-चरोंकी नौलाख प्रकारकी योनियाँ हैं, वृक्ष-लता-पहाड़ आदि स्थावरोंकी बीसलाख प्रकारकी योनियाँ हैं, कृमि-कीटकी ग्यारह लाख प्रकारकी योनियाँ हैं, पक्षियोंकी दस लाख प्रकारकी योनियाँ हैं, पशुओंकी तीसलाख प्रकारकी योनियाँ हैं तथा मनुष्योंकी चार लाख प्रकारकी योनियाँ हैं। इस प्रकार अस्सीलाख योनियोंमें भटकते हुए नाना प्रकारकी यंत्रणाओंको भोग करनेके पश्चात् जीवको विचार-बुद्धि सम्पन्न मनुष्यकी योनि बड़े सौभाग्यसे ही मिलती है। मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि मनुष्य योनि चारलाख प्रकारकी होती है और मनुष्यत्वके तारतम्यसे वे सभी एक-दूसरीसे श्रेष्ठ हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञानके तारतम्यसे मनुष्य-योनियाँ एक से दूसरी श्रेष्ठ हैं। शास्त्रोंके अनुसार भगवद्भक्तियुक्त मनुष्य ही सर्व-श्रेष्ठ मनुष्य है तथा वही मनुष्य शब्दके वाच्य हैं।

प्राणीमात्रको ही हरिभजनमें अधिकार है। यदि पशु हरिकी उपासना करता है, तो वह भी कृष्ण विमुख मनुष्य, देवता गन्धर्व आदिसे श्रेष्ठ है। श्रीचैतन्य चरितामृतमें हम देख पाते हैं कि भक्तप्रवर श्रीशिवानन्दसेनके पास एक कुत्ता था, जो बङ्गालसे पैदल चलकर श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का दर्शन करने गया था। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने इस कुत्तेको भगवद्भक्त बतलाकर उसकी बड़ी ही प्रशंसा की थी। जो प्राणी हरिभजन करेंगे, वे चौरासी लाख योनियोंकी असह्य यंत्रणाओंसे छुटकारा प्राप्तकर भगवान्की कृपासे परागतिको प्राप्त होंगे। देवता और गन्धर्व आदि सभी जीव भगवद्-

भक्तोंकी सेवा करनेके लिए सर्वदा उत्सुक रहते हैं। शास्त्रमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि एक बार देवराज इन्द्रने मुसलाधार वर्षाद्वारा व्रजको डुबा देना चाहा था। इससे श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें उनका अपराध हो गया। उस अपराधसे रक्षा पानेका कोई दूसरा उपाय न देख कर उन्होंने सुरभी नामक एक गायकी शरण ली थी। यद्यपि इन्द्र देवताओंके राजा थे और सुरभी पशुश्रेणीके अन्तर्भुक्त एक गाय थी, फिर भी शास्त्रोंमें सुरभीकी श्रेष्ठता दिखलायी गयी है। सुरभी भगवद्भक्त थी। भगवद्भक्तोंकी महिमाका सर्वत्र ही प्रचुर उल्लेख मिलता है।

रामायणमें भी हम देख पाते हैं कि—जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लंका पर आक्रमण करनेके लिये समुद्रके ऊपर पुलका निर्माण करा रहे थे, उस समय एक छोटी सी गिलहरीने उस निर्माण कार्यमें कुछ सहायता करके भगवान्की सेवा करनेकी चेष्टाकी थी। श्रीरामचन्द्रजी उस तुच्छ एवं संकुचित चेतन गिलहरीकी सेवा-प्रवृत्तिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सन्तुष्ट होकर उसको परागति प्रदानकी। काक-भुशुण्डि, जटायु आदि पशु-पक्षी होकर भी परमगतिको प्राप्त हुए थे। ये देवताओंके भी वन्दनीय हैं।

यद्यपि मनुष्येतर जन्मोंमें भी भगवत् सेवकोंके होनेका उदाहरण पाया जाता है, तथापि मनुष्य जन्म ही भगवान्की सेवा करनेके लिये विशेष अनुकूल होता है। परन्तु यह मनुष्य जन्म अस्सी लाख मनुष्येतर जन्मोंके पश्चात् बड़े ही सौभाग्यसे प्राप्त होता है तथा इसी जन्ममें ईश्वरोपासनाका सबसे बढ़कर सुयोग पाया जाता है। विचार-बुद्धिकी दृष्टिसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। अतएव इस श्रेष्ठ जन्ममें यदि हरिभजन नहीं हो सका तो दुःखकी सीमा नहीं रहती। शास्त्रमें कहते हैं—

आहार निद्रा - भय - मैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि प्राणीमात्रमें अर्थात् मनुष्य, कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि सबमें समानरूपसे देखा जाता है। परन्तु धर्म ही एक ऐसी विशेषता है जिससे मनुष्य अन्यान्य सभी प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। धर्महीन मनुष्य भी पशुके समान ही है।

वर्त्तमान समयमें मनुष्यता कहाँ है ? मनुष्य शब्दकी सार्थकता कहाँ है ? आजकल वे पशु-पक्षी आदि इतर प्राणियोंकी भाँति सब समय खाने-पीने, सोने, मैथुन और भोगोंके भोगनेमें ही व्यस्त रहते हैं। वे भगवद्विमुख होकर द्रुतवेगसे ध्वंसके पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। अपनेको अन्यान्य प्राणियोंसे श्रेष्ठ होनेका जो दावी करते हैं, वह श्रेष्ठताकी दावी आज उनमें नहीं है। इसका कारण यह है कि आज मनुष्य भी पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदिकी भाँति केवल भोगोंको भोगनेमें ही व्यस्त है। बल्कि इन विषयोंमें किसी-किसी अंशमें मनुष्येतर प्राणी भौतिक सुखमें प्रमत्त मनुष्यसे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। मैथुन आदि व्यापारमें पशुओंमें एक निर्दिष्टकाल होता है। परन्तु मनुष्य काल-अकालका तनिक भी विचार न करके सर्वदा उन व्यापारोंमें प्रमत्त रहता है। भगवान्ने कृपा करके समस्त प्राणियोंसे विचार-

बुद्धिसे सम्पन्न जो मनुष्य जन्मकी सृष्टि की है, वह केवल हरिभजनके लिये ही की है—विषयोंको भोगने के लिये नहीं । यदि मनुष्य हरिभजन नहीं करता है, तो वह भी पशु ही है । आजकल प्रायः सभी मनुष्य (अधिकांश मनुष्य) हरिसेवासे विमुख हैं और उनका आचरण पशुओंके समान ही हो चुका है । केवल आर्थिक या भौतिक समृद्धि मनुष्यताका मापदण्ड नहीं, बल्कि हरिसेवा या भगवदुन्मुखता ही मनुष्यताका मापदण्ड है । अतः हरिसेवा विहीन भौतिक दृष्टिसे समृद्ध नर शरीर धारी प्राणी भी पशु ही है । शास्त्रोंका यही तात्पर्य है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

(भा० ११।९।२९)

अर्थात् अनेक जन्मोंके पश्चात् यह मनुष्य जन्म मिला है, अतएव यह अत्यन्त दुर्लभ है । मनुष्य जन्म अनित्य होने पर भी परमार्थको देनेवाला है । इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति मृत्युके निकट पहुँचनेके पहले ही क्षणभरका भी विलम्ब न करके चरम कल्याणकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करेंगे ।

श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र भी कहते हैं—

तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रति चोदनाम् ।
प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥

(भा० ११।१२।१४-१५)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कह रहे हैं—'उद्धव ! तुम श्रुति, स्मृति, विधि, निषेध, श्रवण-योग्य और श्रवण किये हुए समस्त विषयोंका परित्याग करके सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी-स्वरूप एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ; ऐसा होने पर तुम सदाके लिए अभय हो जाओगे ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें तो और भी स्पष्टरूपसे भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्योंको अभय प्रदान करते हुए कहा है—

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"

अर्थात् आर्थनैतिक, वैज्ञानिक और साधारण तथाकथित समस्त धर्म-अधर्मोंको छोड़कर केवलमात्र भगवानके शरणागत होने से ही मनुष्य हुआ जा सकता है ।—

अतएव शास्त्र-प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि भगवान के शरणागत होना हमारा सर्वप्रधान और एकमात्र कर्त्तव्य है । भगवान्के अनन्य शरणागत होना ही यथार्थ मनुष्यत्व है । इसके अभावमें मनुष्य शरीर होने पर भी वह पशु ही है । इसीलिये भक्ताग्रगण्य श्रीनरोत्तम ठाकुरने कहा है—

मनुष्य जनम पाइया, राधाकृष्ण ना भजिया,
जानिया सुनिया विष खाइनु ॥

अर्थात् मनुष्य जन्म पाकर भी श्रीराधाकृष्णका भजन नहीं करना जान-बूझकर विष खानेके समान है ।

—गौड़ीय पत्रिकासे अनुदित